वास्तुशास्त्र के अनुसार विभिन्न वास्तुदोष

डॉ. कृष्णकुमार भार्गव

सारांशः - - वास्तुशास्त्र वासस्थान से संबंधित सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है। वास्तु सिद्धांतों के अनुसार यदि वास स्थान बनाया जाता है तो वह वास्तु सम्मत निर्माण कार्य कहलाता है लेकिन वास्तु सिद्धांतों का अनुपालन यथोचित रूप से नहीं होने से वह निर्माण दोषप्रद होता है । ऐसे ही अनेक दोष वास्तु शास्त्र में दृष्टिगोचर होते हैं जिनका विशेष विचार हमें निर्माण कार्य में करना चाहिए । वास्तु दोषों पर विचार करें तो सबसे पहले गृह निर्माण से पूर्व भूमि के ही विभिन्न प्रकार के दोष बताए गए है जैसे प्लवत्व दोष , भूमि के आकार जन्य दोष, विस्तार संबंधी दोष, शल्य दोष , दिशा के अनुसार अशुभ वृक्ष अर्थात किस दिशा में कौन सा वृक्ष दोष कारक होता है, मुख्य द्वार संबंधी दोष , द्वार वेध दोष ,मर्म वेध दोष, विभिन्न दिशाओं के दोष, मुहूर्तादि दोष । सामान्य रूप से तो कुछ कार्य दिशा विशेष में निषिद्ध बताए ही गए है यथा कभी भी ईशान कोण में शौचालय का निर्माण नहीं होना चाहिए यह प्रमुख दोष होता है । एवं कुछ सामान्य नियम होते है जिनके अनुसार दिशा विशेष का फल सामान्य रहता है अर्थात न ज्यादा शुभ कारक एवं न अधिक हानि कारक इस प्रकार के वचन के अनुसार हम गृह निर्माण कर सकते हैं परंतु जो बिल्कुल निषिद्ध नियम बताए गए है उनके अनुसार निर्माण कभी भी नहीं करना चाहिए । अतः हमेशा गृह निर्माण वास्तु शास्त्र के नियमानुसार ही करना चाहिए जिससे अधिकाधिक शुभ फल की प्राप्ति हो सके एवं मानव उस गृह में सुखमय, शांतिमय जीवन व्यतीत कर सके ।

कुञ्जीशब्दाः - वास्तु दोष, प्लवत्व, शल्य, वेध, मर्म, अति मर्म ।

प्रस्तावना - सृष्टि प्रक्रिया के क्रम में भूलोक में प्राणी मात्र के जन्म उपरान्त प्रत्येक प्राणी की सबसे मूलभूत आवश्यकताओं के अन्तर्गत भोजन वस्त्र एवं आवास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन्हीं आवश्यताओं की पूर्ति प्रक्रिया में प्राणीमात्र आदिकाल से ही संघर्षरत है । इन्हीं आवश्यकताओं में आवास रूपी आवश्यकता का आदिकाल से अद्यावधि अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि कहा जाता है कि **"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"** अर्थात् इस चराचर जगत में धर्म साधन का मूल शरीर ही है एवं शरीर की सुरक्षा आवास स्थान से होती है। आज का युग अत्यन्त आधुनिक, प्रौद्योगिक एवं भौतिकता का युग है । प्रत्येक मानव इस भौतिक युग में

श्रेष्ठता को प्राप्त करना चाहता है इस श्रेष्ठता प्राप्ति हेतु अत्यधिक परिश्रम करता है। पृथ्वी पर जन्म लेने वाले समस्त प्राणियों को आवश्यकतानुसार निवास स्थान की आवश्यकता होती है। सभी प्राणी अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप गृह का निर्माण करते हैं। इस निर्माण में जीवन के समग्र सुख एवं सुरक्षा का भाव अन्तर्निहित रहता है क्योंकि कोई भी प्राणी इस लोक में असुरक्षित जीवन नहीं जीना चाहता। हम सभी जानते हैं कि प्रकृति ने प्रत्येक जीव को अपनी आवश्यकतानुकूल वास-स्थान निर्माण करने की क्षमता एवं कौशल प्रदान किये हैं इसलिये ही इन प्राकृतिक नियमों से आबद्ध होकर अपने सुख-दु:ख का अनुमान कर प्राणी नित नये भयमुक्त वातावरण में सुरक्षित स्थान की खोज करता रहता है। इन्हीं आवश्यक्ताओं की पूर्ति वास्तु शास्त्र के माध्यम से होती है क्योंकि वास्तु शास्त्र वह शास्त्र है जो मनुष्य को हितकाम अर्थात् कल्याण–मार्ग की ओर अग्रसर करता है क्योंकि विश्वकर्मा जी स्वयं कहते हैं कि –

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।

इस प्रकार सारांश रूप में यह कह सकते हैं कि मानव को धर्म-अर्थ-काम द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हेतु निवास स्थान की आवश्यकता प्रतिपल होती है जिसकी पूर्ति वास्तु शास्त्र के नियमानुसार ही संभव है, क्योंकि कुवास्तुजन्य निर्मित भवन मानव को अनेक प्रकार के कष्टों को प्रदान करता है जिससे मानव अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है । संपूर्ण वास्तु शास्त्र सबसे पहले प्रकृति का विचार करता है और प्रकृति के निर्माण में जो पंचमहाभूत प्रधान है वह मनुष्य शरीर में भी विद्यमान है इन्हीं का समावेश भवन निर्माण में करके भवन को सुख संपन्न युक्त बनाया जाता है। विज्ञान के अनुसार प्रकृति के जड़ एवं निर्जीव पदार्थों को पृथ्वी पर विस्तृत व गतिशील इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन सजीव कर गतिशील करते हैं। वास्तु शास्त्र की धारणा यही है कि प्रकृति एवं मनुष्य में सामंजस्य बना रहना जरूरी है। वास्तु शास्त्र का सही अर्थ है कि भवन का प्रत्येक भाग अपनी विशेषता को सक्रिय कर दे। जब मुख्य द्वार से घर में प्रवेश करें तो उसकी सारी चिंता श्रम तनाव दूर हो जाएं, शयनकक्ष में जाए तो गहरी नींद का आनंद मिले, भोजन करें तो भोजन का रस प्राप्त हो, रति गृह में काम के भोग का आनंद ले, पूजा गृह में देव ध्यान में मग्न हो सके। वास्तु शास्त्र ऐसे ही भवन का विधान करता है जो न केवल सुंदर कलाकृतियों से युक्त हो अपितु सुख शांति व समृद्धिदायक हो।

वास्तु शास्त्र में कुछ प्रमुख दोषों का विचार किया गया है। जिससे गृह में विभिन्न प्रकार की हानि एवं अशान्ति का वातावरण होता है, उन्हीं में से कुछ प्रमुख वास्तुदोष निम्नलिखित है।

1 भूमि के दोष

I. प्लवत्व दोष

II. वीथि के अनुसार भूमि के दोष
III. पृष्ठ भाग के अनुसार त्याज्य भूमि
IV. भूमि के आकार संबंधि दोष
V. शल्य दोष

2 -मर्म वेध दोष
3-मुख्य द्वार संबंधि दोष
4 द्वार वेध दोष
5 विभिन्न दिशाओं के दोष
6 वृक्ष संबंधि दोष
7 गृह निर्माण प्रक्रिया में मुहूर्त संबंधि दोष

1- भूमि के दोष – वास्तुदोष विचार क्रम में भवन निर्माण हेतु भूमि की आवश्यकता होती है। यदि भूमि दोष कारक होगी तो निश्चित रूप से उस पर बनने वाला भवन भी दोष कारक होगा। वास्तु शास्त्र में भूमि के शुभ और अशुभ या दोष के ज्ञान के लिए विभिन्न सिद्धान्त बताए गये हैं जो निम्नलिखित हैं।

1- प्लवत्व दोष – गृह दोष विचार के अंतर्गत भूमि के प्ल्वत्व या ढलान के अनुसार भूमि का शुभाशुभत्व या दोष आदि विचार किया जाता है। अर्थात् भूमि का ढलान किस दिशा उत्तम माना गया है एवं किस दिशा में दोष कारक माना गया है, इसका विचार वास्तु शास्त्र में बड़े ही उत्तम तरीके से किया गया है। सामान्यतः आठों दिशाओं (चार मुख्य दिशा एवं चार विदिशा) में भूमि का प्लवत्व या ढलान का शुभाशुभ फल क्रमश: इस प्रकार है- पूर्व दिशा की ओर यदि भूमि का ढलान हो तो वैसी भूमि अत्यंत शुभ होती है जो कि धन-दायक होती है, यदि भूखंड या प्लाट या भूमि का ढलान अग्नि कोण में तो वैसी भूमि का फल अच्छा नहीं होता है उसमें दाह इत्यादि की संभावना रहती है दक्षिण दिशा में यदि भूमि का प्लवत्व हो तो मृत्यु, नैऋत्य कोण में धन का नाश, पश्चिम दिशा में पुत्र की हानि, वायव्य कोण में यदि भूमि का ढलान हो तो परदेश में निवास, उत्तर दिशा में यदि प्लवत्व हो तो धन का आगम एवं ईशान कोण में यदि ढलान हो तो विद्या का लाभ होता है यदि भूखंड के मध्य में गड्ढा हो या ढलान हो तो वैसी भूमि भी कष्टदायक होती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि केवल पूर्व ईशान एवं उत्तर दिशा में भूमि का ढलान शुभ दायक होता है तथा अन्य दिशाओं में यदि भूमि का ढलान हो तो वह दोषकारक या अशुभ फलदायक होता है जब भी भूखंड का चयन करना हो तो उसमें यह निश्चित करना होगा कि भूमि का ढलान उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में हो। यथा –

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयं। प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च॥
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही। मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवततपरा॥[1]

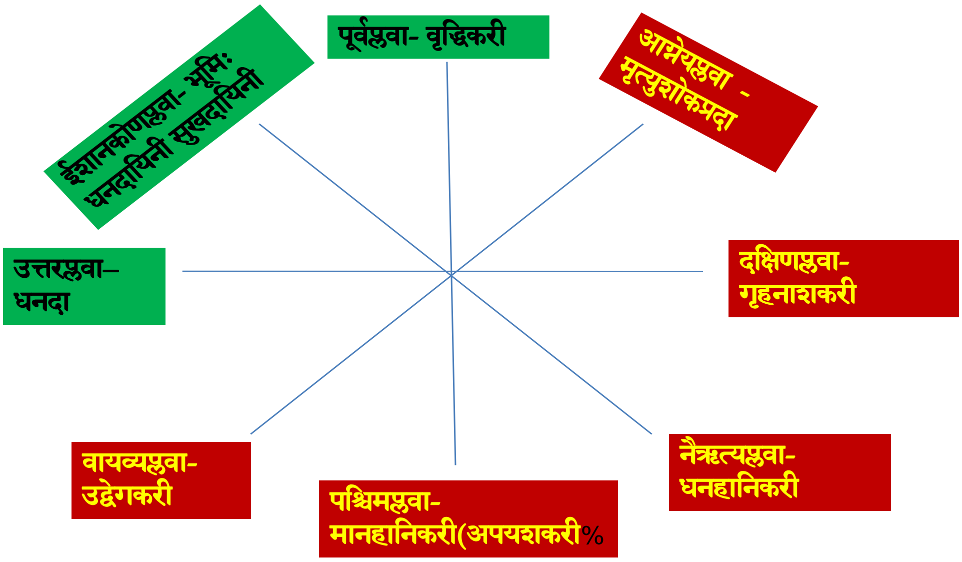

$€Ð ;K∓; χụŷ ÂS3 - / 5 %

इसी तरह भूमि का दिशा एवं कोणों के मध्य भाग में भी प्लवत्व या भूखण्ड का भाग उठा हुआ या ऊंचा रहता है वैसे भूखण्ड की संज्ञा तथा उसका शुभ एवं अशुभ फल भी वास्तु शास्त्र में बताया गया है इसके अनुसार भूखण्ड के दोष की ज्ञान करना चाहिये यथा-[2]

क्रम संख्या	वास्तु संज्ञा	प्लवत्व (ढलान)	उन्नति (ऊँचा)	फल (प्रभाव)
01	पितामह वास्तु	पश्चिम एवं वायव्य के मध्य प्लवत्व या ढलान	पूर्व और आग्नेय के मध्य का भाग ऊँचा	शुभ भूखण्ड
02	सुपथ	पश्चिम –वायव्य	दक्षिण –आग्नेय	प्रशस्त (शुभ)
03	दीर्घायु	उत्तर- ईशान	दक्षिण –नैऋत्य	कुल वृद्धि
04	पुण्यक	पूर्व –ईशान	पश्चिम –नैऋत्य	शुभ
05	अपथ	पूर्व –आग्नेय	पश्चिम –वायव्य	शत्रुता ,कलह

[1] बृहदवास्तुमाला श्लोक 35-36

[2] बृहदवास्तुमाला श्लोक 46-64

06	रोगकृत्	दक्षिण –आग्नेय	उत्तर –वायव्य	रोग
07	अर्गल	दक्षिण –नैऋत्य	उत्तर –ईशान	महापाप (अशुभ)
08	श्मशान	पश्चिम –नैऋत्य	ईशान –पूर्व	कुलनाशक
09	शोक वास्तु	आग्नेय	नैऋत्य, ईशान, वायव्य कोण मे ऊची	संम्पत्ति नाशक
10	श्वमुख वास्तु	नैऋत्य	ईशान, आग्नेय , पश्चिम	दरिद्र
11	ब्रह्मघ्न	पूर्व –वायव्य	नैऋत्य, आग्नेय, ईशान	कृषि योग्य भूमि, निवास हेतु अशुभ
12	स्थावर	नैऋत्य, ईशान, वायव्य	आग्नेय	शुभ
13	स्थण्डिल	आग्नेय ,वायव्य ,ईशान	नैऋत्य	शुभ
14	शाण्डुल	आग्नेय ,नैऋत्य ,वायव्य	ईशान	अशुभ (निवास)
15	सुस्थान वास्तु	वायव्य	आग्नेय ,नैऋत्य, ईशान	ब्राह्मणो के लिये शुभ
16	सुतल वास्तु	पूर्व	नैऋत्य ,वायव्य , एवं पश्चिम	क्षत्रियो के लिये शुभ
17	चर वास्तु	दक्षिण	उत्तर ,ईशान , वायव्य	वैश्यो के लिये शुभ
18	श्व - मुख	पश्चिम	ईशान, पूर्व ,आग्नेय	शूद्रो के लिये शुभ

2- वीथि के अनुसार भूमि के दोष - भूमि के दोष के अंतर्गत भूमि के प्लवत्व एवं उन्नति (ऊँची) अर्थात् दिशा विशेष में ढलान एवं दिशा विशेष का भाग या खण्ड भूमि का उठा हुआ या ऊँचा हो तो उसकी विशेष संज्ञा वीथि संज्ञा वास्तु शास्त्र में बतायी गयी है इसके अनुसार किस दिशा विशेष में भूमि का ढलान एवं एक दिशा विशेष में भूमि का उठा होना शुभ फल

दायक एवं दोषकारक माना गया है इसका विवरण हम निम्न तालिका के माध्यम से समझ सकते है। यथा –[3]

वीथि संज्ञा	**प्लवत्व (ढलान) (दिशा)**	**उन्नति (ऊँची भूमि/भाग) दिशा**	**फल**
गोवीथि	पूर्व	पश्चिम	धनदायक
जलवीथि	**पश्चिम**	**पूर्व**	**अर्थ नाश**
यमवीथि	**दक्षिण**	**उत्तर**	**मृत्यु दायक**
गजवीथि	उत्तर	दक्षिण	धन दायक
भूतवीथि	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	धनहानि
नागवीथि	**वायव्य**	**अग्नि (आग्नेय कोण)**	**परदेश वास**
वैश्वानरी	**अग्निकोण**	**वायव्य**	**दाह**
धनवीथि	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	विद्या लाभ

3- पृष्ठ भाग के अनुसार त्याज्य भूमि - वास्तु शास्त्र में भूमि के दोष या शुभता का ज्ञान भूमि के पृष्ठ के अनुसार भी किया जाता है अर्थात् भूमि का जो पृष्ठीय भाग होता है वह दिशा विशेष में ऊंचा नीचा होने के कारण उसकी विभिन्न प्रकार की संज्ञा की जाती है एवं उसके अनुसार उसका फल कथन भी किया जाता है। जैसे चार प्रकार से पृष्ठ के अनुसार भूमि का वर्गीकरण किया गया है। यथा –

1. गजपृष्ठभूमि 2. कूर्मपृष्ठ भूमि 3. दैत्य पृष्ठभूमि 4. नागपृष्ठभूमि

1. गजपृष्ठभूमि- ऐसी भूमि जो दक्षिण पश्चिम नैऋत्य एवं वायव्य कोण में ऊंचे आकार की हो अर्थात् इन दिशाओं में भूमि का भाग ऊँचा हो तो वैसी भूमि को गजपृष्ठभूमि कहते हैं। गजपृष्ठभूमि पर निवास करने से लक्ष्मी, धन तथा आयु की वृद्धि होती है अर्थात् गजपृष्ठभूमि शास्त्रों में अत्यंत शुभ मानी गई है ऐसी भूमि पर गृह निर्माण प्रशस्त माना गया है।

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके। एभिरुच्चा यदाभूमिर्गजपृष्ठाऽभिधीयते॥
गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः। आयुवृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः॥[4]

[3] बृहदवास्तुमाला श्लोक 41-45

[4] **बृहदवास्तुमाला, श्लोक 82-83**

2. कूर्मपृष्ठ भूमि - कूर्मपृष्ठभूमि उसे कहते हैं जो मध्य भाग में ऊंची हो और चारों दिशाओं में नीची हो अर्थात् भूखंड का बीच का हिस्सा उठा हुआ हो और बाकी सभी हिस्से नीचे हो। कूर्मपृष्ठभूमि पर निवास करने से प्रतिदिन उत्साह एवं धन-धान्य की वृद्धि होती है अर्थात् कूर्मपृष्ठभूमि भी शास्त्रों में शुभ मानी गई है।

मध्येत्युच्च भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्। कूर्मपृष्ठा भवेद् भूमिस्तत्र वासौ विधीयते॥
कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः। धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम्॥[5]

3. दैत्य पृष्ठभूमि - ऐसी भूमि जो पूर्व, ईशान तथा आग्नेय कोण में ऊंची और पश्चिम में नीची भूमि हो वैसी भूमि को दैत्य पृष्ठभूमि कहते हैं। दैत्यपृष्ठ भूमि पर भवन निर्माण करने से गृह में लक्ष्मी कभी प्रवेश नहीं करती और धन, पुत्र, पशुओं का भी विनाश होता है। अतः दैत्य पृष्ठभूमि निंदित भूमि मानी जाती है।

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत्। पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोभिधीयते॥
दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे। धनपुत्रपशुनां च हानिरेव न संशयः॥[6]

4. नागपृष्ठभूमि -पश्चिम की ओर लंबी दक्षिण तथा पश्चिम में ऊंची भूमि को नागपृष्ठभूमि कहते हैं। नागपृष्ठभूमि में निवास करने से मन का उच्चाटन होता है अर्थात् मन में शांति नहीं रहती है। नाग पृष्ठभूमि पर निवास करने से गृह स्वामी की मृत्यु, स्त्री हानि, पुत्र नाश और शत्रुओं का भय बना रहता है । नागपृष्ठभूमि भी निन्दित भूमि मानी जाती है|

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः। नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत्॥
नागपृष्ठे यदा वासो मृत्यरेव न संशयः। पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे॥[7]

4- भूमि के आकार संबंधि दोष - वास्तु शास्त्र में भूमि के दोष का विचार उसके आकार के कारण भी किया जाता है। निम्नलिखित आकार के भूखंड दोष कारक माने जाते हैं।

1-चक्राकार भूमि – वह भूमि जो चक्र के आकार की हो अर्थात बहुत सी भुजाए दिखती हो गोलाई लिए हुये हो चक्राकार भूमि कहलाती है। यह भूमि अशुभ भूमि मानी गई है।

2- विषमाकार भूमि – भूमि का आकार विषम हो अर्थात समान नही हो विषमाकार भूमि कहलाती है। यह भूमि भी अशुभ होती है।

3-त्रिकोणाकार भूमि – त्रिभुज के आकार की भूमि त्रिकोणाकार भूमि कहलाती है। यह भूमि भी निंदित भूमि मानी जाती है।

4-शकटाकार भूमि – गाड़ी की तरह भूमि को शकटाकर भूमि कहा जाता है यह भी अशभू भूमि है।

5 बृहदवास्तुमाला, श्लोक 84-85

6 बृहदवास्तुमाला, श्लोक 86-87

7 बृहदवास्तुमाला, श्लोक 88-89

5- दण्डाकार भूमि – दंड के आकार की भूमि। यह भूखंड भी निंदित माना जाता है।
6- सूपाकारभूमि – सूपे के आकार के समान दिखाई देने वाला भूखंड सूपाकार भूखंड माना जाता है ऐसा भूखंड भी अशुभ माना गया है।
7-धनुषाकार भूमि – धनुष के आकार की तरह आकृति वाली भूमि धनुषाकार भूमि कहलाती है निवास हेतु यह भी अशुभ मानी जाती है।
8- मृदंगाकार भूमि- मृदंगाकर अर्थात ढोलक के आकार की भूमि भी वास्तु शास्त्र में निंदित भूमि मानी जाती है।

9- व्यजनाकार भूमि - व्यजनाकार अर्थात हाथ का जो पंखा होता है उस आकार की भूमि अशुभ फल दायक होती है।

10 **विस्तार के अनुसार भूमि -** सामान्यरूप से भूखण्ड का विस्तार यदि ईशानकोण-उत्तर या पूर्व दिशा में हो तो वह भूखण्ड शुभ एवं भाग्यप्रद होता है। यदि भूखण्ड का विस्तार नैऋत्य, वायव्य, या आग्नेय कोण में हो तो वैसे भूखंड दोष कारक माने जाते हैं।
5- शल्य दोष - शल्य युक्त भूमि अर्थात हड्डियों से युक्त भूमि दीमक इत्यादि से युक्त भूमि, ऊंची नीची भूमि अशुभ भूमि हैं अर्थात इस प्रकार की भूमियों में भवन निर्माण नहीं करना चाहिए यह भूमि आयु एवं धन का नाश कर आती है। यथा –

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा। दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ॥[8]

उपर्युक्त भूमि के अनुसार उनका फल भी पृथक-पृथक बताया गया है जैसे फटी हुई भूमि यदि हो तो उससे मरण, ऊषर (अनुपजाउ भूमि) भूमि से धन नाश, शल्य युक्त या हड्डी युक्त भूमि से क्लेश, ऊंची नीची भूमि से शत्रु वृद्धि, शमशान जैसी भूमि से भय, दीमक इत्यादि से व्याप्त भूमि में विपत्ति, गड्ढों वाली भूमि से विनाश और कूर्माकार अर्थात जो बीच में उठी हो वैसी भूमि से धन नाश होता है|

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी। सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥
चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत्। गर्तायांतु विनाशः स्यात् कुर्माकारे धनक्षयः ॥[9]

इस प्रकार भूमि में भवन निर्माण से पूर्वशल्य शोधन अवश्य करना चाहिए जिससे वह भूमि शल्य दोष से मुक्त हो जाए एवं वह शुभ फल दायक हो।
2- मर्म वेध दोष – वास्तु पुरुष के मर्म स्थान सिर , मुख , हृदय , दोनों स्तन, और लिंग ये मर्म स्थान है। यथा-

[8] बृहदवास्तुमाला श्लोक 79
[9] बृहदवास्तुमाला श्लोक 80-81

मुखे हृदि च नाभौ च मूर्ध्नि च स्तनयोस्तथा।
मर्माणि वास्तुपुंसोऽस्य षण्महान्ति प्रचक्षते ॥[10]

इन मर्म स्थानों में निर्माण कार्य नहीं करना चाहिए। इसी क्रम में महामर्मस्थान या अतिमर्म स्थान भी वास्तु शास्त्र में बताए गए हैं जैसे एकाशीति पद विन्यास के अनुसार-

रोगाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात्।
मुख्याद् भृशं जयन्ताच्च भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम्॥
तत्सम्पाता नव ये तान्यतिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि।
यश्च पदस्याष्टांशस्तत्प्रोक्तं मर्मपरिमाणम्॥[11]

अर्थात रोग से लेकर अनिल तक , पिता से शिखी तक , वितथ से शोष तक ,मुख्य से भ्रूश तक , जयंत से भृंगराज तक , और अदिति से सुग्रीव तक विस्तृत सूत्रों का जो नौ स्थानों में स्पर्श होता है वह वे स्पर्श स्थान वास्तु पुरुष के अति मर्म स्थान होते। यथा -

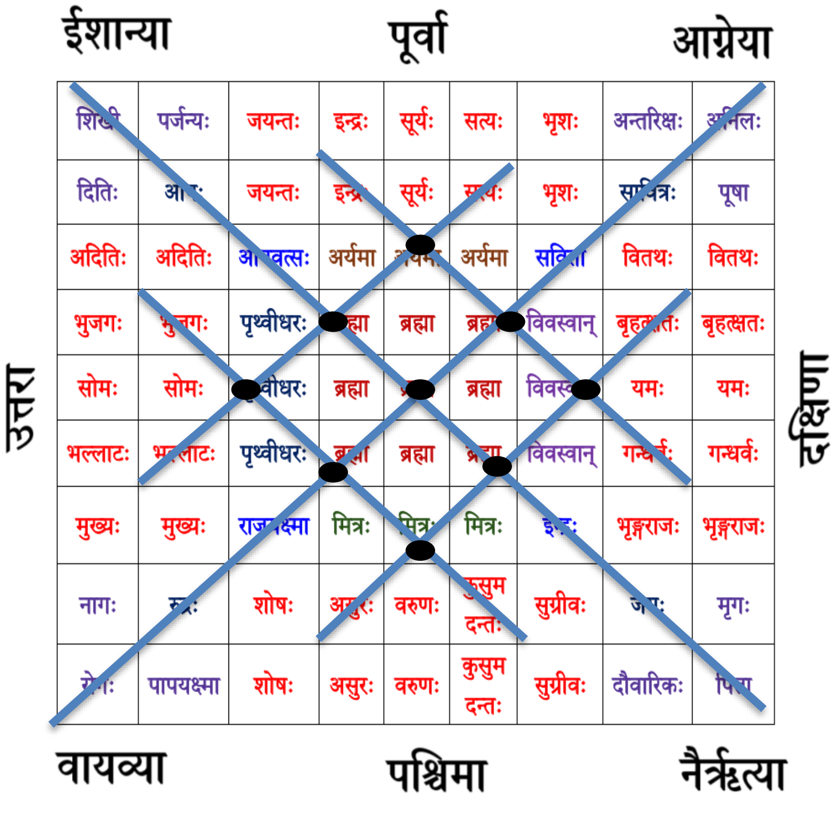

ये नौ अति मर्म स्थान ब्रह्म स्थान में आते हैं। इन मर्म स्थानों में कोई भी निर्माण कार्य नहीं करना चाहिए अर्थात पिलर आदि इन मर्म स्थानों में न आए। ब्रह्मस्थल हमेशा रिक्त रहना

10 समरांगणसूत्रधार 13 अध्याय श्लोक 7

11 बृहत्संहिता – वास्तुविद्याध्याय – श्लोकः ५९

चाहिए। यही मर्म वेध दोष कहलाता है। आवासीय निर्माण एकाशीति पद वास्तु के अनुसार करना चाहिए। अत एव यथा संभव इन मर्म स्थानों में निर्माणकार्य से बचना चाहिए।

3 -मुख्य द्वार संबंधि दोष – भवन में मुख्य द्वार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है इसके लिए वास्तु पद विन्यास के अनुसार प्रत्येक दिशा के भवन के लिए कुछ निश्चित भाग में मुख्य द्वार बनाना चाहिए अन्य पदों में बनाया गया द्वार दोषकरक होता है यथा एकाशीति पद विन्यास के अनुसार मुख्य द्वार के लिए शुभ स्थान निम्नलिखित चक्र में हरे रंग से युक्त पद है अन्य सभी पद मुख्य द्वार हेतु अशुभ माने जाते हैं।

<u>एकाशीति-पदवास्तुविन्यास</u>

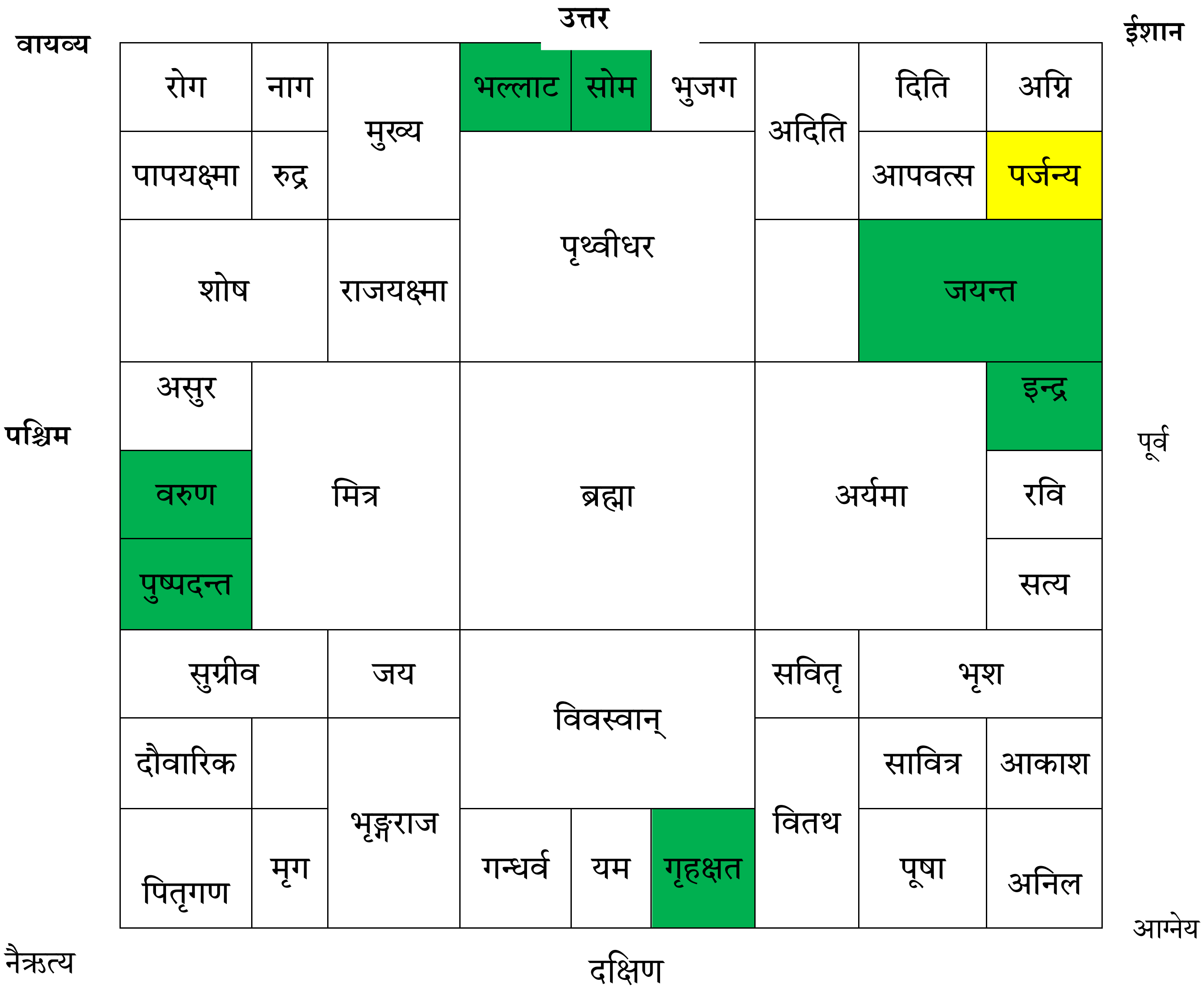

इसी प्रकार द्वार के अन्य दोष भी कहे गए हैं जैसे द्वार के ऊपर द्वार का निर्माण नहीं करना चाहिए तथा द्वार कभी भी कोने में यथा इशान्यकोण में या आग्नेय कोण में या नैऋत्य कोण में या वायव्य कोण में नहीं बनाना चाहिए। साथ ही साथ द्वार का निर्माण शुभ महूर्त में करना चाहिए।

4. द्वार वेध दोष – वेध शब्द का शाब्दिक अर्थ रुकावट या किसी के मध्य में कोई वस्तु आ जाना वेध कहलाता है। यह वेध वास्तु दोष कारक होता है, जिसका फल गृहस्वामी या परिवार में रहने वाले अन्य सदस्यों को भी भोगना पड़ता है। कुछ द्वार वेध इस प्रकार से हैं –

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय॥[12]

अर्थात मार्ग, वृक्ष, कूप, स्तम्भ आदि से द्वार का वेध होता है। द्वार वेध के कुछ प्रमुख विचारणीय बिन्दु निम्नवत है -

1- मुख्य द्वार के सामने कोई भी बड़ा वृक्ष नहीं होना चाहिए इससे संतान पक्ष की हानि होती है।

2- मुख्य द्वार के बिल्कुल सामने गलीया रास्ता हो जिससे सीधे घर में प्रवेश होता है तो यह भी द्वार वेध होता है इस प्रकार का द्वार वेध गृहस्वामी को मृत्यु अथवा कष्ट देता है।

3- मुख्य द्वार के सामने दलदल इत्यादि नहीं होना चाहिए यह धन धन का व्यय कराता है।

4- मुख्य द्वार के ठीक सामने कुआ नहीं होना चाहिए , इससे मिर्गी इत्यादि की बीमारी होने की संभावना रहती है।

5- मुख्य द्वार के ठीक सामने मंदिर भी नहीं होना चाहिए यह भी अशुभ कारक माना गया है।

6- हमेशा मुख्य द्वार वास्तु पद के कोण में नहीं बनाना चाहिए यह भी अशुभ कारक माना गया है।

7- मुख्य द्वार के ठीक सामने अपने मकान या दूसरे के मकान की सीढ़ियां हो तो भी यह वेध कारक माना गया है।

8- मुख्य द्वार बिल्कुल सीधा होना चाहिए आगे पीछे इस का झुकाव नहीं होना चाहिए यह भी एक प्रकार का दोष माना जाता है।

5. विभिन्न दिशाओं के दोष - वास्तु शास्त्र के मुख्य सिद्धांत विषयों में दिशा विचार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि वास्तु शास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में भवन में बनाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के कक्ष इत्यादि के लिए दिशा विशेष का निर्धारण किया गया है, यदि वह निर्माण दिशा

[12] बृहत्संहिता – वास्तुविद्याध्यायः – श्लोकः ७६

विशेष के अनुसार नहीं किया जाए तो इससे वास्तु दोष उत्पन्न होता है। क्रमशः पूर्वादि 8 दिशाओं के दोष निम्नलिखित है -

1- पूर्व दिशा के दोष - पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र एवं ग्रह स्वामी सूर्य है। पूर्व दिशा से भवन में विभिन्न प्रकार के रोगों या कीटाणु नाशक पराबैंगनी किरणों का प्रवेश सीधा होता है अतः पूर्व मुखी द्वार एवं खिड़की, साथ ही साथ पूर्व दिशा में भवन का प्लवत्व (ढलान) एवं भवन का अधिकतम खुला भाग और नीचा निर्माण भाग वास्तु सम्मत माना जाता है। जबकि पूर्व दिशा में गृहस्वामी का शयनकक्ष, शौचालय, छत और तल का शेष घर से ऊंचा होना भवन की पूर्व दिशा में किया गया अधिकतम निर्माण वास्तु दोष माना जाता है। अतः इस प्रकार के दोष से बचना चाहिए।

2- आग्नेय दिशा के दोष - पूर्व और दक्षिण के मध्य की दिशा आग्नेय विदिशा या आग्नेय कोण कहलाती है। इस दिशा के स्वामी अग्नि एवं ग्रह स्वामी शुक्र है। यह अग्नि के लिए सर्वोत्तम स्थान है अतः रसोई कक्ष (किचन) के लिए यह अत्यंत उपयुक्त स्थान है। इसके साथ ही साथ विद्युत संबंधी जितने उपकरण होते हैं वह भी इसी दिशा में स्थापित करने चाहिए। आग्नेय दिशा में जल का संग्रह दोष कारक माना जाता है। इस दिशा में भवन का मुख्य द्वार भी वास्तु दोष का एक प्रमुख कारण है। नैऋत्य कोण की अपेक्षा इसका ऊंचा होना भी दोष कारक माना जाता है, साथ ही साथ इस दिशा में दक्षिण की ओर या आग्नेय की ओर भवन का विस्तार होना भी वास्तु दोष कारक है।

3-दक्षिण दिशा के दोष - दक्षिण दिशा के स्वामी यम एवं ग्रह स्वामी मंगल है । भवन की इस दिशा में किया गया निर्माण कार्य पूर्व तथा उत्तर की तुलना में ऊंचा होना चाहिए। भवन की दक्षिणी दीवार ऊंची तथा भारी होना शुभ दायक माना गया है। इस दिशा में गृहस्वामी का शयनकक्ष अत्यंत उपयुक्त स्थान होता है। इस दिशा में कुआं और ट्यूबवेल या पूजा कक्ष एवं अध्ययन कक्ष या गड्ढा होना वास्तु दोष उत्पन्न करता है।

4-नैऋत्य दिशा के दोष - दक्षिण एवं पश्चिम के मध्य की दिशा नैऋत्य दिशा कहलाती है। इसके स्वामी नैऋति एवं ग्रह स्वामी राहु है। यह दिशा भारी वस्तुओं के भंडारण हेतु उत्तम मानी जाती है। इस दिशा का तल और छत भवन के बाकी भागों से अधिक ऊंचे होने चाहिए। शयन कक्ष का निर्माण भी इस दिशा में उत्तम माना गया है। इस दिशा में ढलान रसोईघर, सेप्टिक टैंक, कुआ या किसी भी प्रकार का गड्ढा वास्तु दोष कारक माना जाता है।

5- पश्चिम दिशा के दोष - इस दिशा के स्वामी वरुण और ग्रह स्वामी शनि है। इस दिशा में सूर्य का प्रकाश न्यूनतम प्राप्त होना चाहिए अतः खिड़कियां यथा संभव कम होनी चाहिए। यह दिशा भोजन कक्ष के लिए उपयुक्त है। इस दिशा में भवन का ढलान होना, शयनकक्ष होना वास्तु दोष पैदा करता है।

6- वायव्य दिशा के दोष - दक्षिण एवं उत्तर के मध्य की दिशा वायव्य दिशा कहलाती है। इसके स्वामी वायु एवं ग्रह स्वामी चंद्रमा है। यह दिशा अतिथि कक्ष, सेप्टिक टैंक और पेड़ पौधों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस दिशा में अध्ययन कक्ष वास्तु दोष कारक है।

7- उत्तर दिशा के दोष - उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर और ग्रह स्वामी बुध है। इस दिशा में धन संग्रह, अध्ययन कक्ष, पूजा कक्ष, उत्तम माना गया है। इस दिशा में मुख्य द्वार, खिड़कियां इत्यादि शुभ मानी जाती है। इस दिशा में रसोईघर शौचालय होना या पुरानी भारी वस्तु होना वास्तु दोष कारक मानी जाती है।

8- ईशान दिशा के दोष - उत्तर एवं पूर्व के मध्य की दिशा ईशान दिशा कहलाती है। इसके स्वामी शिव और ग्रह स्वामी बृहस्पति हैं। इस दिशा में खिड़कियां, खुलापन, ढलान, पूजाघर, ट्यूबवेल या जल इत्यादि की व्यवस्था होना अत्यंत शुभ माना जाता है। इस दिशा में शौचालय, पानी की ऊंची टंकी, ऊंची दीवार या इस दिशा का तल शेष भवन से ऊंचा होना वास्तु दोष कारक माना जाता है।

6. वृक्ष संबंधि दोष – भवन के किस भाग में कौन से वृक्ष दोष कारक होते हैं इसका चिंतन भी वास्तु शास्त्र में अत्यंत विस्तार से किया गया है इसके अनुसार पूर्व में बरगद का वृक्ष वर्जित या अशुभ माना जाता है इसी प्रकार दक्षिण में पाकड़ का वृक्ष, तथा पश्चिम में पीपल का वृक्ष और उत्तर दिशा में गूलर का वृक्ष वर्जित है। यथा-

अश्वत्थः पूर्वतो धन्यो दक्षिणस्यामुदुम्बरः। न्यग्रोथ पश्चिमे श्रेष्ठः प्लक्षोऽप्युतरतः शुभः॥
न्योग्रोधः पुवतो वर्ज्यो दक्षिणे प्लक्ष एव च। अश्वत्थः पश्चिमे भागे ह्युत्तरे चाप्युदुम्बरः॥[13]

उपर्युक्त निषिद्ध दिशाओं में इन वृक्षों का जो फल प्राप्त होता है वह इस प्रकार है पश्चिम दिशा में स्थित पीपल के कारण अग्नि का भय, एवं दक्षिण दिशा में स्थित पाकड़ के वृक्ष से प्रमाद, पूर्व में स्थित बरगद के वृक्ष से शस्त्र भय, एवं उत्तर में स्थित गूलर के वृक्ष से उदर रोग होता है। अतः इन दिशाओं में उपर्युक्त निषिद्ध वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए उन वृक्षों को उनकी दिशा के अनुसार ही गृह के आस पास लगाना चाहिये। यथा –

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात् प्लक्षः कुर्यात् प्रमादकम्। न्यग्रोधः शस्त्रसंपातं कुक्षिरोगमुदुम्बरः॥[14]

7 गृह निर्माण प्रक्रिया में मुहूर्त सम्बन्धि दोष – गृहारंभ तथा गृह पुवेश तथा अन्य गृह संबन्धि निर्माण कार्य शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए। क्योंकि हम सभी जानते हैं कि शुभ मुहूर्त में किया गया कार्य शुभ फलदायक होता है एवं अशुभ मुहूर्त में किया गया कार्य विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करता है। शास्त्रों में प्रत्येक कार्य के लिए शुभ मुहूर्त बताए हैं तथा कार्य

[13] बृहदवास्तुमाला श्लोक 71-72

[14] बृहदवास्तुमाला श्लोक 73

विशेष के लिए निंदित समय भी बताया गया है अतः सर्वदा निंदित समय का त्याग करना चाहिए एवं शुभ काल का ग्रहण करना चाहिए। यथा उदाहरण स्वरूप गृह निर्माण हेतु –

1 – गृहारंभ हमेशा दिन में ही करना चाहिए।

2- चातुर्मास में गृहारंभ नहीं करना चाहिए।

3- भूमि शयन काल में भी गृहारंभ नहीं करना चाहिए।

4- गृहारंभ शुक्र एवं गुरु के अस्त रहते हुये नहीं करना चाहिए।

5- गृहारंभ के काल में गृह स्वामी की राशि से चंद्रमा 4-8-12 वे स्थान में नही होना चाहिए।

6- गृहारंभ के समय शुभ ग्रह केंद्र तथा त्रिकोण स्थान में शुभदायक तथा पाप ग्रह त्रिषडाय स्थान में शुभ माने जाते हैं।

7- गृह प्रवेश में वाम रवि आदि का विचार भी अवश्य करना चाहिए।

इस प्रकार गृहारंभ एवं गृह प्रवेश शुभमुहूर्त में ही करना चाहिए अन्यथा यह भी एक दोष माना जाता आ है।

उपसंहार – वास्तुशास्त्र भारतीय परंपरा में भवन निर्माण की एक वैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रणाली है, जो पंचतत्त्वों (जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश) के संतुलन पर आधारित है। यदि इस संतुलन में गड़बड़ी हो जाए या दिशाओं का अनुचित प्रयोग हो, तो वह **वास्तुदोष** कहलाता है। विभिन्न प्रकार के वास्तुदोषों का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य, समृद्धि, मानसिक शांति एवं संबंधों पर नकारात्मक रूप में पड़ सकता है। उपर्युक्त वास्तुदोषों का त्याग करते हुए यथा संभव गृह निर्माण वास्तु सिद्धांतों के अनुसार करना चाहिए। जिससे वह भवन सकारात्मक ऊर्जा से युक्त रहे। तथा वहाँ पर रहने वाले सभी मानव एक सुखमय, शांतिमय एवं आनंददायक जीवन व्यतीत कर सके।

सन्दर्भग्रन्थसूची :-

(क) मूल लेखक – विश्वकर्मा, सम्पादक एवं टीकाकार –महर्षि अभय कात्यायन , विश्वकर्मप्रकाशः(२०१३), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ।

(ख) मूल लेखक – श्रीरामनिहोर द्विवेदी संकलित, टीकाकार –डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एवं डा रवि शर्मा , बृहद्वास्तुमाला(२०१८), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ।

(ग)मूल लेखक – श्रीरामदैवज्ञ , टीकाकार – प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय,मुहूर्तचिन्तामणिः(२००६) वास्तुप्रकरण , चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी ।

सहायकग्रन्थाः

मयमतम् – मयमुनि

बृहत्संहिता – वराहमिहिर

वास्तुसारः – प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी

सहायक-आचार्य, ज्योतिष -वास्तुविभाग, राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय तिरुपति, आंध्र-प्रदेश